# पूंजीवाद और शिक्षा: कुछ मौलिक मुद्दे

अमन मदान

**समाज की उत्पादन प्रक्रियाओं और संबंधों का असर समाज के पूरे ताने-बाने पर पड़ता है। शिक्षा भी इससे अछूती नहीं रह पाती। पिछले कुछ सौ सालों में सभी समाज सामंतवादी उत्पादन प्रक्रियाओं से पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रियाओं में तब्दील हुए हैं। इसका असर शिक्षा प्रक्रियाओं, शिक्षा के उद्देश्यों एवं शिक्षा की विषयवस्तु पर भी पड़ा है। यह लेख समाज के इन बदलावों का शिक्षा पर प्रभाव और चुनौतियों पर विचार करता है।**

इस श्रृंखला के पिछले लेख में यह प्रस्तावित किया गया था कि माल एवं सेवाओं का आदान-प्रदान (commodified exchange) ने हमारे रोज़मर्रा के रिश्तों और हमारी शिक्षा, दोनों को बहुत प्रभावित किया है। शिक्षा जिस तरह के समाज एवं मूल्य बनाना चाहती है तथा शिक्षा के अंदर की प्रक्रियाएं भी इससे प्रभावित हुई हैं। भारत में पूंजीवाद का विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो शिक्षा पर गहरा असर कर रही है। ऐसा नहीं है कि वह अकेली ऐसी प्रक्रिया है, जनतंत्र की बढ़त, कई तरह के राजनैतिक और आर्थिक समूहों का उभरना, धार्मिक संगठनों का एकजुट होना, प्रगतिशील बुद्धिजीवियों का सक्रिय होना; इत्यादि, इन सब का अपना असर हुआ है। जटिल समाज, जिनके बारे में कुछ अंक पहले लिखा था, सिर्फ पूंजीवाद से नहीं बनते, उनके बनने में और भी कई प्रक्रियाएं शामिल होती हैं। जटिल समाजों की कई ऐसी ज़रूरतें होती हैं जिन्हें सिर्फ पूंजीवाद पूरा नहीं कर सकता। लेकिन इन जरूरतों को हम जिस तरह से पूरा करते हैं उनमें पूंजीवाद का असर दिखता है, जैसे कि एक खास तरह के राष्ट्रवाद का बनना। आजकल के राष्ट्रवाद में बाज़ारीकरण और वैश्वीकरण के असर बड़े साफ़ दिखाई देते हैं। ऐसा नहीं है कि पूंजीवाद हमारे समाज को पूरी तरह प्रभावित और परिभाषित करता है। कभी ऊपर लिखी प्रक्रियाएं उसके साथ मिल जाती हैं और कभी उसका विरोध भी करती हैं। हो सकता है कि शिक्षक अपनी पहचान पारंपरिक गुरुओं से बनाए या हो सकता है कि वह अपने-आपको राष्ट्र की विशाल नौकरशाही का एक मुलाज़िम ही समझे। या हो सकता है कि वह अपने-आपको ऐसा व्यक्ति समझे जिसका काम पूंजीवादी रिश्तों के लिए उपयुक्त सिपाही ही बनाना है। फिर यह भी हो सकता है कि शिक्षक अपने-आपको सशक्त व्यक्तियों का निर्माण करने वाला समझे जो कि धीरे-धीरे पूंजीवाद को तब्दील कर देंगे। शिक्षक अपने आप और अपने व्यवसाय के बारे में क्या सोचता है या बच्चे अपने भविष्य के बारे में क्या सोचते हैं, इन सबमें पूंजीवाद का काफी योगदान रहा है।

हो सकता है कि विद्यालय और शिक्षक के काम से आख़िरकार जो समाज और राज्य बनेगा वह पूंजीवादी ही हो। मगर यह अनिवार्य नहीं है। पूंजीवादी राज्य वह है जिसमें जो लोग समाज में बिखरी हुई (disembedded) पूंजी इकट्ठा करते हैं, आम तौर से रुपयों की शक्ल में, वे समाज और संस्कृति पर हावी रहते हैं। यह एक ऐसे समाज से भिन्न है जिसमें कि राजा और ज़ागीरदार प्रभुत्व में रहते हैं। यह वर्ग अपनी ताकत ज़मीन पर राज करके पाते हैं, जमीन का व्यापार करके नहीं। इनमें सत्ता सरपरस्ती और नमकहलाली के रिश्तों पर कायम रहती थी, ये ऐसे रिश्ते थे जो जल्दी बदलते नहीं थे। पूंजीवाद में मौलिक रूप से ताकत ऐसी पूंजी से आती है जो कि बाज़ार के आदान-प्रदान से बनती है। यह पूंजी बहुत जल्दी इधर से उधर हो सकती है। पूंजी के बनने में बाज़ार की जो भूमिका होती है, उसे कुछ लोग निष्पक्ष मानते हैं और कुछ लोग निहित रूप से ज़्यादा पूंजी वालों की तरफ झुकी हुई।

**लेखक परिचय**

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हौशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बैंगलोर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।

पूंजीवाद शिक्षा के लिए कुछ बड़े मौलिक सवाल पैदा करता है, कि शिक्षा का समाज में क्या उद्देश्य और कार्य होना चाहिए। कार्ल मार्क्स ने एक चित्रण प्रस्तुत किया था कि उन्नीसवीं शताब्दी में पूंजीवाद का मानव जीवन के लिए क्या मतलब है। मार्क्स के समय में जो मौलिक संक्रमण हो रहा था वह था सामंतवादी उत्पादन पद्धति से पूंजीवादी उत्पादन पद्धति में बदलाव। मोटे-मोटे रूप से सामंतवादी उत्पादन पद्धति वह थी जिसे हम भारत, चीन और पश्चिमी यूरोप में मध्यकाल में देख सकते थे। समाज पर बड़े ज़मींदारों का वर्चस्व था, जो अपनी ज़मीन अक्सर अपने राजा या राजनैतिक स्वामी के प्रति वफ़ादारी के कारण पाते थे। राजा अपने वफ़ादारों को ज़मीन देता था और उसके बदले उनकी सेवा और सम्मान पाता था। राजा को युद्ध के समय फौजें और एक सालाना लगान भी दिया जाता था। दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में कई फर्क थे, मगर उनमें जो साझा था वह थी धीमी गति से चलने वाली एक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था, जिसमें शासन का आधार था मालिक और सेवक के बीच में निजी और व्यक्तिगत संबंध जो कि प्रभुत्व और अधीनता के थे। खेतों पर काम करने वाले अक्सर अपने मालिक को अपने परिवार के बड़ों की तरह समझते थे। माई-बाप और आका जैसे शब्द इस रिश्ते को दिखलाते थे जो सामंतवादी दौर में एक मज़दूर और उसके स्वामी के बीच रहता था।

पूंजीवादी उत्पादन पद्धति में, इसके विपरीत, एक तेज गति से चलने वाली अर्थव्यवस्था है, जिसमें पूंजी एक ऐसे रूप में रहती है- रुपयों में- जो कि आसानी से हस्तांतरित की जा सकती है। पूंजी को निवेशित करने में आसानी होती है ताकि नए और ज़्यादा फायदेमंद निवेश करके उससे जल्दी से जल्दी मुनाफा कमाया जा सके और उसे लगातार घुमाते रहा जा सके। सामंतवादी उत्पादन की तुलना में पूंजीवादी उत्पादन में बनने वाले रिश्ते कहीं ज़्यादा आसानी से तोड़े और फिर से बनाए जा सकते थे। इससे पूंजीपति को नए निवेश के मौके और नई उत्पादन विधियों तथा मज़दूरों को ढूंढ़ने में आसानी रहती है। सामंतवादी मज़दूर तो अपने मालिक के लिए मरने तक को भी तैयार हो जाता था, और इस तरह के संबंध को बनाए रखने के लिए कई कहानियां और मिथ्याएं गढ़ी जाती थीं। मगर पूंजीवादी दौर एक अनुबंध और सौदे का दौर है, जिसे कभी भी तोड़ा और फिर से बनाया जा सकता है। सत्ता का आधार अब ज़मीन नहीं है, बल्कि मौद्रिक पूंजी को ज्यादा से ज़्यादा एकत्रित करने की क्षमता है। जिनके पास ज्यादा पूंजी है वे बाज़ार को ज़्यादा अच्छी तरह अपनी मुट्ठी में रख सकते हैं और, कम से कम उसूलन तो, ज्यादा कुशल तरीके से उत्पाद बना सकते हैं। बात सिर्फ पैसों और उत्पादन की नहीं है, मूल्यों और विचारों की भी है। जहां सामंतवाद में वफ़ादारी सबसे बड़ा गुण था, वहां पूंजीवाद में कुशलता की तलाश की जाती है, जो यह बताती है कि कम से कम लागत में कितना उत्पादन किया जा सकता है। ऐसे में वह ज्ञान महत्त्वपूर्ण हो जाता है जो बता सके कि किसी काम में कितनी मेहनत लगाई गई है और सबसे कम लागत वाला तरीका कौनसा है। ऐसा नहीं कि इस तरह के ज्ञान पहले नहीं थे, मगर उनका महत्त्व अब बढ़ जाता है। जहां पहले वह अशिक्षित था जिसे धर्म और समाज के ऊंच-नीच का ज्ञान नहीं था, अब शिक्षित वह है जो कि गुणा और भाग कर सकता है।

सामंतवाद और पूंजीवाद में एक महत्त्वपूर्ण फ़र्क दोनों में बनने वाले रिश्तों में है। सामंतवादी उत्पादन में मज़दूर मालिक के फ़ायदे के लिए उसकी वफ़ादारी और नमकहलाली के संस्कार से प्रेरित होकर काम करता है, चाहे उस संस्कृति का आधार मालिकों द्वारा हिंसा और मार-पीट क्यों न हों। पूंजीवाद में मज़दूर मोल-भाव के संस्कार सीखता है और अपने मालिक के फ़ायदे के लिए काम एक सौदे में करता है, जहां वह अपनी मज़दूरी पैसों के लिए बेचता है। इन संस्कारों में प्रतिस्पर्धा महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि मज़दूर को वश में रखने के लिए यह डर लगातार सामने रखा जाता है कि बाज़ार में कम पैसों पर काम करने के लिए उस जैसे और भी खड़े हैं। पूंजीवाद में कई ऐसी मान्याताएं सिखाई जाती हैं जो कि सामंतवाद में उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होतीं। जैसे कि निजी संपत्ति की अवधारणा, कि फैक्ट्री का एक मालिक होता है जो उसका और उसके उत्पादों का अकेला हक़दार है और कोई अन्य व्यक्ति इस पर कोई दावा नहीं कर सकता।

पूंजीवादी व्यवस्था का विकास समाज के बिखराव में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। पूंजीवाद का अर्थ बाज़ार के उन शोषण संबंधों से है जिसके द्वारा ज़्यादा से ज़्यादा पूंजी को संचित किया जा सके। ऐसी परिस्थिति में पूंजी अपने बिखरे (disembedding), देहमुक्त, विकेन्द्रित और विस्थापित रूप में होती है।

जिस तरह के प्रश्न यह सामाजिक परिवर्तन पैदा करता है, उनमें से पहला यह है कि शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं और उसका सार क्या है। उदाहरण के लिए, उन्नीसवीं शताब्दी में ही मार्क्स ने कहा था कि नए दौर की शिक्षा को अपने-आपसे पूछना पड़ेगा कि क्या उसे अभी भी सामंतवादी राजाओं और उनकी शानो-शौकत के बारे में पढ़ाना चाहिए। पूंजीवाद के दौर में शायद यह ज़्यादा ज़रूरी है कि बच्चों को सिखाया जाए कि कैसे टेक्नोलॉजी पुराने सामाजिक रिश्तों को तोड़कर नए रिश्ते बना रही है। कैसे नई उत्पादन की ताकतें तैयार हो रही हैं और कैसे कंपनियां इस नई दुनिया की सबसे ताकतवर संस्थाएं बन रही हैं।

शिक्षा में हम क्या सिखाना चाहते हैं उसे इन परिवर्तनों को सामने रखकर तय करना पड़ेगा। अगला मसला यह भी उठ सकता है कि क्या हमें पूंजीवाद की संस्कृति बिना उस पर कोई सवाल किए सिखानी चाहिए या हमें पूंजीवाद से आगे की चीज़ सिखानी चाहिए, ऐसे संस्कार जो कि पूंजीवाद की समस्याओं को भी हल कर सकें। उदाहरण के लिए, क्या प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना चाहिए, जो कि पूंजीवाद में एक मज़दूर की ज़िन्दगी का अभिन्न हिस्सा है। या क्या हमें आपसी सहयोग को बढ़ावा देना चाहिए, जो कि जटिल समाजों को बनाए रखने के लिए और ज्यादा महत्त्वपूर्ण हुआ जा रहा है, विशेष रूप से नए अति-आधुनिक उत्पादन प्रक्रियाओं में। पूंजीवाद द्वारा पैदा किए शोषण को ख़त्म करने के लिए भी सहयोग की भावना बहुत ज़रूरी है। प्रतिस्पर्धा के मूल्यों को बढ़ावा दें या सहयोग के, समाजशास्त्री शिक्षा के लिए ऐसे विकल्पों को समझने में मदद करते हैं। बच्चे और बड़े अपने-आप सहयोग या प्रतिस्पर्धा नहीं सीखते। वे इन्हें विद्यालयों और अपने समाज से सीखते हैं। भारतीय शिक्षा को इनमें से कौनसे को प्राथमिकता देनी चाहिए?

आजकल के कई धर्म संकट इस सामंतवाद से पूंजीवाद में परिवर्तन की उपज हैं। एक जमाना था जब हमें सिखाया जाता था कि ज्ञान से प्रेम करना चाहिए और जहां सरस्वती रहती है वहां लक्ष्मी नहीं रह सकती। शास्त्रों से, शायरी से, साहित्य से इसलिए प्यार किया जाता था क्योंकि वे हमें अच्छे संस्कार सिखाते थे। अक्सर यह भी होता था कि वे संस्कार सामंतवादी समाज को बनाए रखने के लिए उपयुक्त भी होते थे। यह कोई संयोग की बात नहीं थी कि जो मर्यादा पुरुषोत्तम था वह भूमि का राजा भी था। मगर पूंजीवाद के युग में ज्ञान फ़ायदे के लिए प्राप्त किया जाता है, उन पुराने संस्कार के लिए नहीं। अब नए संस्कार और नया ज्ञान सिखाया जाता है जिसमें एम.बी.ए. और पूंजीपति मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।

पूंजीवादी उत्पादन शैली को समझना शिक्षाविदों के लिए महत्त्वपूर्ण काम है, विशेष रूप से जब उसको इस सवाल से जोड़ा जाए कि किस तरह की उत्पादन शैली मानव आज़ादी के लिए सबसे ज़्यादा मददगार होगी। अगर शिक्षा से हमारा मतलब है इंसानों को उनको नीचे खींचने वाले बंधनों से आज़ाद करना और उन्हें एक ज़्यादा सक्षम और संपूर्ण जीवन दिलाना, तो हमें यह पूछना पड़ता है कि पूंजीवाद में क्या समस्याएं और मतभेद हैं और उनका हल कैसे हो सकता है।

कई अन्य दार्शनिकों की तरह मार्क्स का भी मानना था कि दुनिया में सब कुछ बदल जाएगा। मार्क्स का बहुत मशहूर कथन है कि हर समाज अपने अंदर स्वयं को बदलने वाले बीज लेकर चलता है। एक उत्पादन शैली से दूसरे उत्पादन शैली में परिवर्तन एक धीमी गति की प्रक्रिया है, जिसमें बहुत समय लगता है और कई तकलीफ़ों का सामना करना पड़ता है, जिनको कई सौ साल भी लग सकते हैं। हर समाज में कई अंतर्विरोध या संघर्ष होते हैं। वे सदियों तक सुलगते रह सकते हैं, मगर आखिरकार उनमें से कुछ अंतर्विरोध सामाजिक ताकतों का एक ऐसा ध्रुवीकरण पैदा कर सकते हैं जो कि समाज को बदलकर एक नया ढांचा ला देता है।

सामंतवादी समाजों में मार्क्स का कहना था कि यह समाज बदलने वाला अंतर्विरोध एक तरफ राजाओं, सामंतों और दूसरी तरफ व्यापारियों और साहूकारों के बीच में था। सामंतवादी समाज धीमी गति से चलते थे और उनमें साधनों पर कब्जा सामंती कुलीन वर्ग का रहता था। वे धन का इस्तेमाल अपने ऐशो-आराम और राजनैतिक दिखावेबाजी

के लिए करते थे। इनके विपरीत व्यापारी वर्ग और जो लोग व्यावसायिक गतिविधियों में लगे हुए थे धन के प्रति अलग रवैया रखते थे। उनको दिखता था कि उनका भविष्य उनके धन पर आधारित था, राजनीति या शान पर नहीं। पूंजी लोगों को अपनी ऊंची हैसियत दिखाने के लिए नहीं, बल्कि अधिक मुनाफ़ा कमाने के लिए इस्तेमाल करनी थी। यह मुनाफ़ा फिर और मुनाफ़ा कमाने के लिए इस्तेमाल होता था। पैसों को बड़े ध्यान से खर्च किया जाता था और एक सादी, अनुशासित ज़िन्दगी में ही पूंजी - और पूंजीपति - का भला था। साधनों के प्रति इस रवैये के चलते पूंजीवाद ने उत्पादकता बढ़ाने पर लगातार जोर दिया। उत्पादन के तरीकों और साधनों में सुधार होता गया और लागत से निकलने वाले मुनाफ़े में भी। पहले उत्पादन जानवरों और इंसानों की ताकत से होता था, फिर मशीनीकरण हुआ और तेल एवं बिजली का इस्तेमाल होना शुरू हो गया। जहां भूमि और पशु से उत्पादन होता था, अब मशीनों और फ़ैक्ट्रियों से होता है।

इसमें कोई हैरानी वाली बात नहीं होगी अगर पूंजीवाद में भी उसी को तब्दील करने वाले बीज हों, जो कि आखिरकार उसे भी बदलकर एक बिल्कुल नई उत्पादन व्यवस्था बना दे। उस नई दिशा के लिए उपयोगी होगा कि हम पूंजीवाद के अंदर के अंतर्विरोध को देखें। यह समाज कैसे बदल रहा है और वह किस तरफ़ जा सकता है?

## विराग (ALIENATION)

पूंजीवाद में एक महत्त्वपूर्ण अंतर्विरोध उसमें आम पैदा होने वाली विराग या परायेपन की भावना है, जो कि अपने काम से संतुष्टि या उसका फल न मिलने से बनती है। एक किसान को अपने खेत में काम करके कई महीनों की कड़ी मेहनत के बाद उसकी गेहूं की खड़ी लहलहाती फसल दिखती होगी। उसे एक ऐसा आनंद मिलता है जिसे शब्दों में बयान करना मुश्किल है। लेकिन जो व्यक्ति एक सॉफ्टवेयर कंपनी की बड़ी टीम में काम करता है, वह सिर्फ एक विशाल प्रोग्राम के छोटे से टुकड़े को बनाता है। अक्सर उसे सिर्फ यही बताया जाता है कि इन आंकड़ों को उस तरह तब्दील कर दो। किस लिए और इसका किसी के जीवन में क्या मतलब है, यह सब बातों से तो ख़र्चे बढ़ते हैं और मुनाफ़ा घटता है। अपने काम में आनंद न मिल पाना, पूंजीवाद में असंतुष्टता और तनाव का एक बड़ा कारण है।

विद्यालयों और कंपनियों में विराग रोज़मर्रा जिन्दगी का हिस्सा ही बन गया है। विराग एक जाना पहचाना एहसास है, उस छात्र के लिए जो कि कक्षा में जो पढ़ाया जा रहा है उससे अपने-आपको जोड़ नहीं पाता, क्योंकि शिक्षक के पास समय नहीं है कि विषय पर खुलकर बात की जाए। सब छात्रों को साथ लेकर चलने की कीमत बहुत ज़्यादा है। जब ख़र्चा कम करके ज्यादा आंकड़े और उत्पादन दिखाना एक समाज और उसके विद्यालय के मुख्य मूल्य बन जाते हैं, तो विराग को बड़ी बात नहीं माना जाता। या ऐसे कहें कि जो लोग उस व्यवस्था में सत्ताधारी होते हैं उन्हें उसकी कोई ख़ास चिन्ता नहीं सताती।

कुछ कंपनियां हैं जो कि विराग से पहुंचने वाले नुक्सान को समझने लगी हैं और अब अपना मुनाफ़ा कम करने को तैयार हैं ताकि काम करने के तरीके बदले जाएं और लोगों को अपने काम में सार्थकता देने को महत्त्व दिया जाए। इसी तरह शिक्षक भी यह कोशिश कर रहे हैं कि पाठ्यक्रम को जल्दी-जल्दी पूरा करने की बजाय, उसे ज्यादा रुचि और समझ आधारित तरीके से कैसे पढ़ाया जाए।

एक और तरीका है काम से निकलने वाले विराग को कम करने का। कई लोग सार्थकता की तलाश मौज-मस्ती और उपभोक्तावाद से भी करते हैं। क्योंकि पूरा हफ्ता तनाव और विराग से भरा बीतता है, छुट्टी के दिन उसका हिसाब बराबर किया जाता है। उपभोग की वस्तुओं से लोगों को कई तरह के एहसास और अर्थ मिलते हैं जिनकी उन्हें तलाश रहती है। इश्तेहार और मार्केटिंग की कंपनियां वस्तुओं के साथ कई तरह के बिंब जोड़ती हैं जिसे लोग पसंद करेंगे। नई-नई चीजों को खरीदकर व्यक्ति को वह आनंद मिलता है जो कि उसे अपने काम से नसीब नहीं होता। मगर यह अभी कहना मुश्किल है कि क्या इससे समस्या ख़त्म हो जाती है, या सिर्फ ढक जाती है।

## शोषण

पूंजीवाद में एक सामाजिक रिश्ता निहित है जिसे 'शोषण' (exploitation) कहते हैं और यह काफी तनाव पैदा करता है। अगर आप ध्यान से देखें तो पूंजीवाद में पूंजीपति का मुनाफ़ा मज़दूरों के शोषण द्वारा ही आता है। एक उदाहरण से स्पष्ट होगा कि यहां शोषण से क्या मतलब है।

मान लीजिए कि एक फैक्ट्री का मालिक मोबाइल फोन बनाने के लिए एक इंजीनियर रखता है। जब मोबाइल फोन तैयार हो जाता है वह 5000 रुपये में बिकता है। उसमें से इंजीनियर का कितना योगदान है और उसे वेतन के रूप में कितना हिस्सा देना चाहिए? इंजीनियर को उसका उचित वेतन देने के बाद और बाकी खर्चे जैसे कि किराया, बिजली, पुर्जे, इत्यादि निकालने के बाद जो बचता है वह है मालिक का मुनाफ़ा। पूंजीवाद की समस्या यह है कि इंजीनियर को जो दिया जाता है उसका उसके योगदान से सीधा संबंध नहीं होता। उसकी जगह बाज़ार में उस जैसे इंजीनियर की पूर्ति और मांग से उसका वेतन तय होता है। अगर मांग से ज़्यादा इंजीनियर उपलब्ध हैं तो वे कम तनख़्वाह पर भी काम करने को तैयार हो जाते हैं। या अगर सिर्फ थोड़े से ही इंजीनियर हैं जो मोबाइल फोन बना सकते हैं तो वे ज़्यादा तनख़्वाह मांग सकते हैं। अगर दूसरा उदाहरण लें तो उस व्यक्ति का क्या योगदान है जो उस मोबाइल फोन के पुर्जों को टांके लगाकर केस में बंद करता है। उसे तनख़्वाह उस योगदान की नहीं मिलती है, बल्कि वह मिलती है जो कि उस समाज में एक दसवीं पास और दो-एक साल की ट्रेनिंग किए व्यक्ति की पूर्ति के हिसाब से बनती है। यह इससे तय होता है कि उस जगह पर ऐसे कितने लोग उपलब्ध हैं। एक उचित वेतन उस समय तय नहीं हो सकता जब वेतन पूर्ति और मांग को बनाने वाली सत्ता और ताकत पर आधारित है। अगर बाज़ार उचित वेतन देता तो वह न्यायपूर्ण होता। मगर हम अपने आस-पास जो देखते हैं उसमें ऐसा बाज़ार नहीं दिखता। पूंजीवाद की विशेषता यही है कि वेतन शोषण और बाज़ार की छल से तय होता है।

शोषण की अवधारणा यही है कि व्यक्ति को मजबूर होकर उसे जो सही रूप में मिलना चाहिए था उससे कम स्वीकार करना पड़ता है। मालिक आमतौर पर भाव-ताव करने की ज्यादा मज़बूत स्थिति में होता है और वेतन को उतना कम खींच ला सकता है कि जो बाज़ार में उन दिनों पूर्ति और मांग के हिसाब से लाया जा सकता है। अप्रशिक्षित काम के लिए यह अक्सर दो समय की रोटी से ज्यादा ऊपर नहीं होता, जिससे व्यक्ति जीवित रह सके और अगले दिन फिर काम के लिए आ सके। बाज़ार में मालिक की ताकत को बराबर करने का एक तरीका है सामूहिक सौदेबाजी करना, ताकि एक-एक करके कामगारों की वेतन न तोड़ी जाए। कुछ जागृत मालिक मुनाफ़े और नीतियों में हिस्सेदारी देकर कामगारों के मन में शोषण के एहसास को खत्म कर रहे हैं। मगर कई औद्योगिक क्षेत्रों में लगातार हड़ताल और दोनों तरफ से हिंसा से पता चलता है कि पूंजीवाद का यह अंतर्विरोध अभी तक सुलझा नहीं है और हो सकता है कि यह हमारे काम करने के तरीकों को बदल सकता है।

## पूंजीवाद के बदलते रूप

पूंजीवाद के अंदर के अंतर्विरोध उसे धीरे-धीरे बदल रहे हैं। ऐसा नहीं है कि पूंजीवाद भी अटल और अपरिवर्तनीय है। वह इतिहास से बना है और अलग समय पर उसका अलग रूप रहा है। एक रूप था वाणिज्यिक (mercantile) पूंजीवाद का जिसमें व्यापार द्वारा मुनाफ़ा बनाने पर जोर दिया जाता था, जैसे कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने दिया था। उसने फ्रांसीसियों और पुर्तगालियों को इसलिए बाहर रखने की कोशिश की थी ताकि वे आकर भारतीय व्यापारियों को ज़्यादा कीमत देकर बाज़ार पर उसकी अपनी पकड़ को कमजोर न करें। फिर बाद में उसने भारत में औद्योगिक निर्माण को इसलिए दबाए रखा ताकि वह अंग्रेज़ी उद्योग के लिए बाज़ार बना रहे।

एक दूसरा रूप पूंजीवाद का दिखता है बीसवीं शताब्दी की शुरुआत का जब फ़ैक्ट्रियों में बड़े पैमाने पर उत्पादन (mass production) आम होने लगा। अब हमारे सामने पूंजीवाद का एक वैश्विक दौर है जिसमें निर्माण विकसित देशों से निकलकर कुछ आधे-विकसित देशों में जा रहा है। और निर्माण की जगह अब फिर से व्यापार और सेवाएं हावी हो रही हैं भारत और अन्य देशों में मुनाफ़ा बनाने के तरीकों में।

शोषण अभी भी पूंजीवाद का अभिन्न अंग है। मगर पूंजीवाद को इतने सालों में अपना स्वरूप भी बदलना पड़ा है। कई ताकतों ने उसका विरोध किया है, जैसे कि मज़दूरों के संगठनों ने, धार्मिक विचारधाराओं ने, पर्यावरण पर काम करने वाले समूहों ने। उदाहरण के लिए, इसका एक असर यह हुआ है कि अमरीका में दूसरे विश्व युद्ध के बाद मालिक अपने मुनाफ़े का ज्यादा हिस्सा मज़दूरों के साथ बांटने लगे, जो कि 1980 के दशक तक चला। इससे वहां ऐसी परिस्थिति पैदा हुई कि इलेक्ट्रीशियन और वैल्डिंग जैसे अर्ध-कुशल कारीगर भी एक मकान ख़रीद सकते थे और गाड़ी चला सकते थे। इससे विपरीत ढांचा हमें दिखता है सोवियत रूस, चीन और क्यूबा जैसे देशों में। आजकल भी कई तरह के नए विकल्प जैसे कि एक पारस्परिक आश्रय (mutualism) की विचारधारा के प्रस्ताव आए जा रहे हैं। पूंजीवाद से उभरते पर्यावरण के विनाश से निपटने के लिए पूंजीवाद ने बीसवीं शताब्दी में श्रमिकों के साथ कई तरह के समझौते किए और उन्हें बेरोज़गारी भत्ता और बढ़ी हुई तनख़्वाहें दीं। पश्चिमी यूरोप और कैनेडा में समाजवादी और सामाजिक-जनतांत्रिक सरकारों ने कल्याणकारी राज्य (welfare state) बनाए जिन्होंने गरीबों की घर और चिकित्सा की जरूरतों को पूरा किया। हम आजकल जब वहां सभी बच्चों को अच्छे विद्यालयों में जाते देखते हैं वह इन्हीं राजनैतिक प्रक्रियाओं के चलते हुआ है। बड़ी कंपनियों ने ज़्यादा कर देना स्वीकार किया और उससे गरीबों के लिए विद्यालय और शिक्षक उपलब्ध हो पाए। वहां ज़्यादातर लोग सरकारी विद्यालयों में ही जाते हैं और वे काफी अच्छे चलते हैं। आज की शिक्षा प्रणाली बनी ही इन समझौतों से है, जिसमें पूंजीवाद, सरकार और कई वर्ग तथा समूहों ने आपस में करार किया। जब हम आजकल भारत में सबके लिए शिक्षा की मांग सुनते हैं तो यह ध्यान रखना चाहिए कि यह तभी हो सकता है जब पूंजीवाद में मुनाफ़ा बढ़ाने की प्रवृत्ति पर अंकुश रखा जाए।

## भारत में सरकार, पूंजीवाद और शिक्षा

बाकी दुनिया की तरह भारत में भी पिछली शताब्दी भर से यह माना गया है कि पूंजीवाद पर नियंत्रण रखना आवश्यक है और उसे नियमित करना सभी के लिए अच्छा है। समाज की ज़रूरतों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए, बाज़ार में सत्ताधारियों की ज़रूरतों को नहीं। पूंजीवाद को नियंत्रित करने वाली संस्थाओं को सभी लोगों के प्रति जवाब़देह होना चाहिए, सिर्फ अमीरों के प्रति नहीं। इसीलिए भारत के संविधान में एक जनतांत्रिक तरीके से चुनी गई सरकार का प्रयोजन किया गया। अमरीका, इंग्लैण्ड और फ्रांस की तरह यहां पर भी यह चलन रहा है कि यह तय करने के लिए कि साधनों का बंटवारा कैसे किया जाए सिर्फ बाज़ार में हावी लोगों की ही नहीं, बाकी समाज की आवाज भी सुनी जाए, यह तय करने के लिए साधनों का बंटवारा कैसे किया जाए, कौनसे सामाजिक मूल्यों को बढ़ावा दिया जाए इत्यादि। सरकार, बाज़ार और समाज के बीच में किस तरह का संतुलन हो, इसके कई स्वरूप हो सकते हैं। जब भारत को आज़ादी मिली तो सरकार ने हमारे विकास को दिशा दिखाने की ज़िम्मेदारी ली थी। निजी कंपनियों को न इस ज़िम्मेदारी लायक माना गया था और न ही उन पर यह भरोसा था कि वे लोगों के भले के बारे में सोचेंगे, न कि सिर्फ अपने भले का।

1950 के दशक में हमारा जनतंत्र काफी हद तक एक मुट्ठी भर उच्च वर्ग और उच्च जाति के लोगों के हाथ में था। हालांकि आज़ादी की लड़ाई में छोटे किसानों और मज़दूरों की भागीदारी पर ज़ोर दिया गया था फिर भी उनका निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में दख़ल ज़्यादा नहीं था। उस समय देश के सबसे ताकतवर समूह थे बड़े किसान, बड़ी कंपनियां और सरकारी मुलाज़िम खुद। नेहरू के दौर की सरकार में सबसे ऊपर कुछ ऐसे पढ़े-लिखे लोग थे जिनको यह यकीन था कि पूंजीवाद भारत की बड़ी समस्याओं का हल नहीं दे सकता था। सरकार ने विकास की नीतियां बनाईं और बड़े औद्योगिक निर्माण कराए। सरकार ने एक आदर्श काम देने वाले की भूमिका भी निभाई, और अपने मुलाजिमों को ऐसी तनख़्वाह और भत्ते दिए जो कि पूंजीपतियों के लिए मिसाल बने। यह वही दौर था जब सरकारी विद्यालय बड़ी तादाद में खुले और शिक्षकों की भरती हुई। सरकारी शिक्षक निजी स्कूलों के शिक्षक से कहीं ज़्यादा वेतन लेते थे और निजी स्कूलों के बनिस्बत शिक्षक सरकारी स्कूलों में जाना ज़्यादा पसंद करते थे। भारत में विकास का यह चरण भारत-चीन युद्ध के साथ 1962 में ख़त्म होना शुरू हो गया।

1970 के दशक में सरकारी संस्थाओं की कुछ समस्याएं सामने आईं और उस दौर को अब लाइसेंस राज के नाम से भी जाना जाता है। कई सरकारी मुलाज़िमों ने अपनी कुर्सी का दुरूपयोग किया और लोगों की सेवा की जगह अपने ही हितों की सेवा की। क्योंकि जनतांत्रिक व्यवस्था बड़े लोगों के ही हाथ में थी, आम इंसान सरकारी मुलाज़िमों पर ठीक से काम करने के लिए दबाव नहीं डाल पाता। भ्रष्टाचार और निकम्मेपन को बढ़ने की छूट मिली क्योंकि जनतंत्र उस पर लगाम नहीं डाल सका।

ऐसी परिस्थितियों में कुछ लोगों ने फिर से बाज़ार और पूंजीवाद की तरफ देखना शुरू किया है कि शायद वे ही इस का इलाज दे दें। यह कहा जाता है कि अपने लाभ को देखकर व्यक्ति ज़्यादा अच्छा काम करेगा न कि सहयोग और सेवा की भावना से। तो फिर बहुत से उद्योगों और सेवाओं के निजीकरण से ही शायद वे ठीक से काम करेंगी। इस तरह की दलीलें शिक्षा के निजीकरण के लिए भी दी जाती हैं और कार्पोरेट घरों की बढ़ती ताकत को स्वीकारने के लिए भी। भारत में जो तब्दीलियां आ रही हैं उनसे कार्पोरेशनों और याराना पूंजीवाद (crony capitalism) के प्रति सरकार का बढ़ता हुआ झुकाव दिख रहा है। यह पिछली केन्द्रीय सरकार में भी दिखता था और मौजूदा केन्द्रीय सरकार में बढ़ गया है।

यह देश और पूरा विश्व भी किस दिशा में जाएंगे इसकी भविष्यवाणी करना तो बड़ा मुश्किल है। मगर पूंजीवाद की तरफ़ बढ़ते कदमों के साथ क्या समस्याएं आएंगी, शायद इनका अंदेशा तो हो सकता है, कार्पोरेशन और उनके मालिक और वरिष्ठ मैनेजर इस देश के सबसे ज़्यादा ताकतवर लोग बन जाएंगे, शिक्षा का अर्थ कंपनियों के लिए वफ़ादार मुलाज़िम तैयार करना हो जाएगा, न कि स्वतंत्र सोच वाले इंसान। उच्च शिक्षा सिर्फ उतने से लोगों के लिए होगी जितने की ज़रूरत कार्पोरेशनों को होगी, बाकी लोगों के लिए बस स्कूली शिक्षा ही पर्याप्त मानी जाएगी। यह बातें पूंजीवाद के अंदरूनी स्वरूप के अनुसार हैं और इनसे खर्चा भी कम है और मुनाफ़ा भी ज़्यादा। मगर समाज में और प्रक्रियाएं भी हैं और उनका अपना तर्क और स्वरूप है। जैसे कि एक जागृत जनतंत्र के लिए अनिवार्य है कि सभी नागरिकों को सुने और उन्हें सम्मान दे, न कि सिर्फ अमीरों को। सांस्कृतिक मान्यताओं का अपना दबाव भी हो सकता है, जो कि मुनाफ़े को कम महत्त्व दे सकती हैं और कह सकती हैं कि कुछ काम तो किए ही जाने चाहिएं, क्योंकि वे नैतिक कारणों से उचित हैं, चाहे उनमें लागत ज़्यादा ही क्यों न हो। यह कहा जा सकता है कि शिक्षा का अर्थ है जागृति और स्व-इच्छा और स्वधर्म से कुछ भी बनने की आज़ादी, चाहे इससे करों में बढ़ोतरी ही क्यों न हो और अमीरों का मुनाफ़ा थोड़ा कम भी हो जाए तो चलेगा।

भारत में पूंजीवाद ने जहां एक तरफ सामंतवादी संस्कृति एवं पुराने सामंती रिश्तों को उखाड़ कर नए विकल्प इज़ाद किए हैं, वहीं दूसरी ओर वह अपने साथ नए बंधनों और अंतरर्विरोध को जन्म देता है, हालांकि यह जानना मुश्किल है कि हम कहां जाएंगे या पूंजीवाद किस परिवर्तित रूप में उभरेगा। इन सवालों के जवाब के लिए हमें पूंजीवाद को समझने की ज़रूरत तो है ही, उससे होने वाले परिणाम और उनके विकल्पों को भी समझने की आवश्यकता है। जहां तक शिक्षा का सवाल है, सिर्फ पूंजीवाद अकेले ही शिक्षा को प्रभावित नहीं करता। शिक्षा पूंजीवाद और सरकार दोनों से अभिन्न तरीके से जुड़ी है, चाहे वह पाठ्यक्रम में कैसा ज्ञान हो का मामला हो या शिक्षकों की छवि या छात्रों के मूल्यों का। शिक्षाविदों को भारत एवं अन्य जगहों पर पूंजीवाद, शिक्षा और समाज के रिश्तों पर उठते हुए प्रश्नों और चिंताओं से जूझना पड़ेगा। ◆

### आगे पढ़िएः


Kumar, K. (2011). Teaching and the Neo-Liberal State. Economic and Political Weekly, 46(21), 37–40.

Kumar, R. (2006). Equality, Quality and Quantity – Mapping the Challenges before Elementary Education in India. In R. Kumar (Ed.), The crisis of elementary education in India (pp. 13–39). New Delhi?; Thousand Oaks, Calif: Sage.

Marx, K. (1847). Wage Labour and Capital. Retrieved from http://www.marxists.org/archive/marx/works/1847/wage-labour/index.htm